



2026:AHC:172219

08.07.2026 को सुरक्षित

14.08.2026 को पारित

उच्च न्यायालय, इलाहाबाद  
आपराधिक अपील संख्या - 2329/1983

महानंद तिवारी

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता

: ए.एम. त्रिपाठी

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता

: अपर शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या - 93

माननीय न्यायमूर्ति संतोष राय

1. अपीलार्थी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री कुंदन मिश्रा तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पुरुषोत्तम मौर्य को सुना गया।
2. यह अपील श्री एस.एस. श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश, देवरिया द्वारा एस.टी. संख्या 256/1976 (राज्य बनाम महानंद तिवारी और अन्य) में पारित दिनांक 21.09.1983 के निर्णय और आदेश तथा दिनांक 22.09.1983 के दंडादेश आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थीगण महानंद तिवारी, श्रद्धानंद तिवारी, शिव हर्ष और शिवजी यादव को धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत तथा धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया, और धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास तथा धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 307 के अंतर्गत अपराध के लिए तीन वर्ष के कठोर कारावास

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



से दंडादिष्ट किया गया, दोनों दंडादेश समवर्ती रूप से चलेंगे। सह-अभियुक्त, तेज नारायण उर्फ तेजू को संदेह का लाभ दिया गया और विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया।

3. इस न्यायालय के संज्ञान में यह लाया गया है कि इस अपील की लंबित अवधि के दौरान, चार अपीलार्थियों में से तीन, अर्थात् महानंद तिवारी, शिव हर्ष और शिवजी यादव, की मृत्यु हो चुकी हैं। अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी अकेले जीवित हैं। धारा 394(1) दं.प्र.सं. के निबंधनों में, अपील महानंद तिवारी, शिव हर्ष और शिवजी यादव के विरुद्ध इस न्यायालय द्वारा पूर्व में ही उपशमित हो चुकी है। अपील केवल अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी की हैसियत से विचारार्थ विद्यमान है।

4. संक्षेप में कथित अभियोजन का वाद यह है कि सूचनाकर्ता हरेंद्र कुमार तिवारी के भाई, बटुकदेव तिवारी (पी.डबल्यू.1), जो वर्ष 1969 से मणिनाथ इंटर कॉलेज, नोनापार के प्रबंधक थे, के संबंध सहग्रामवासी परमानंद तिवारी और उनके परिवार के साथ दीर्घकालीन वाद-विवाद के कारण, जिसमें धारा 107/117 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाहियां तथा कॉलेज के बादों से संबंधित एक सिविल वाद, जो वर्ष 1973 में विनिश्चित हुआ, सम्मिलित हैं, तनावपूर्ण हो गए थे। दिनांक 20.03.1974 की प्रातः, बटुकदेव तिवारी, अपने भाई हरेंद्र कुमार तिवारी (पी.डबल्यू.2) तथा एक भैरवनाथ के साथ, देवरिया के लिए लोकल ट्रेन पकड़ने हेतु नोनापार रेलवे स्टेशन पहुंचे। यह अभिकथित है कि अपीलार्थीगण, मृत सह-अभियुक्त परमानंद तिवारी और गोविंद तिवारी के साथ, लाठियों से सुसज्जित होकर प्लेटफार्म पर पहुंचे, जिनमें से कुछ में लोहे की जड़ाई थी, और यह कि परमानंद तिवारी अतिरिक्त रूप से एक पिस्तौल/रिवॉल्वर से सुसज्जित था। अपीलार्थी महानंद तिवारी के बटुकदेव तिवारी को "खत्म" कर देने अथवा मार डालने के उकसावे पर, परमानंद तिवारी ने अपनी पिस्तौल से उसे पर फायर किया, जो निशाने से चूक गई, जिसके पश्चात हमलावरों ने बटुकदेव तिवारी को घेर लिया और उसे लाठियों से पीटा, जिससे उसके हाथ, पैर और दांत भंग हो गए तथा उसकी छाती, पीठ और सिर पर क्षतियां कारित हुईं। यह अभिकथित है कि परमानंद तिवारी ने साक्षियों को अपनी पिस्तौल से धमकाकर दूर रखा, और यह कि हमले के दौरान घायल की जेब से रु. 300/- से रु. 400/- की राशि निकाल ली गई। लोकल ट्रेन के आगमन पर हमलावर पूर्व दिशा की ओर भाग गए। बटुकदेव तिवारी को उनके भाई द्वारा, पहले भटनी और तत्पश्चात जिला संयुक्त चिकित्सालय, देवरिया ले जाया गया, जहां उन्हें गंभीर अवस्था में भर्ती कराया गया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



5. अपने भाई के उपचार में व्यस्तता के कारण, हरेंद्र कुमार तिवारी ने थाना कोतवाली, देवरिया में दिनांक 20.03.1974 को सायं 7.15 बजे लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) दर्ज कराई, जिसके आधार पर धारा 395/397 भा.द.सं. के अंतर्गत मामला पंजीकृत किया गया। कागजात जी.आर.पी., भटनी को प्रेषित किए गए, जहां मामला धारा 147, 323, 325 और 379 भा.द.सं. तथा रेलवे अधिनियम की धारा 120 के अंतर्गत अपराध संख्या 41 के रूप में पंजीकृत किया गया। विवेचना पूर्ण होने पर, उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत दिनांक 30.05.1974 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। वाद, जो प्रारंभ में धारा 395 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के लिए सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था, विचारण हेतु अग्रसर हुआ, और धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 147 और 307 के अंतर्गत आरोप अंततः दिनांक 25.02.1980 को विरचित किए गए। विचारण की लंबित अवधि के दौरान, सह-अभियुक्त परमानंद तिवारी और गोविंद तिवारी की मृत्यु हो गई, और उनके विरुद्ध कार्यवाहियां उपशमित हो गईं।

6. अभियोजन ने सात साक्षियों की परीक्षा की। पी.डबल्यू.1 बटुकदेव तिवारी, घायल, ने शत्रुता की पृष्ठभूमि, घटनास्थल पर अपीलार्थीगण और मृत सह-अभियुक्तगण की उपस्थिति, परमानंद तिवारी द्वारा फायरिंग, महानंद तिवारी द्वारा उकसावे, तथा लाठी के प्रहारों से उन पर हमले, जिसके परिणामस्वरूप वे बेहोश हो गए, के संबंध में विस्तार से गवाही दी। पी.डबल्यू.2 हरेंद्र कुमार तिवारी, सूचनाकर्ता, ने लाठियों और एक अग्न्यायुध से सुसज्जित अभियुक्तगण की उपस्थिति, महानंद तिवारी द्वारा मार डालने के उकसावे, तथा हमले की संपुष्टि की। उन्होंने लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 को प्रमाणित किया। पी.डबल्यू.3 दुर्गासरन तिवारी, एक स्वतंत्र साक्षी, ने घटना की संपुष्टि की, परंतु अपने मुख्य परीक्षण में कथन किया कि दोषमुक्त अभियुक्त तेज नारायण उर्फ तेजू केवल घटनास्थल के निकट खड़ा था और उन्होंने उसे बटुकदेव तिवारी को पीटते हुए नहीं देखा, एक ऐसी परिस्थिति जिसके कारण विचारण न्यायालय ने केवल तेजू को संदेह का लाभ दिया। इसके अलावा, उनकी गवाही ने अपीलार्थीगण को मामले में फंसाया। पी.डबल्यू.4 लाल बचन सिंह (हेड मोहर्रिर, जी.आर.पी., भटनी) और पी.डबल्यू.7 उप निरीक्षक जगदीश मिश्रा (विवेचना अधिकारी) ने रोजनामचा आम की प्रविष्टियों, स्थल के नक्शे-नज़री (प्रदर्श क-8), तथा प्लेटफार्म के रक्त-रंजित टुकड़े की बरामदगी और सीलबंदी (प्रदर्श क-9) के औपचारिक पहलुओं को प्रमाणित किया। पी.डबल्यू.5 कुंज बिहारी सिंह (एक्स-रे तकनीशियन) ने खोपड़ी, दाएं अग्रबाहु, बाएं अग्रबाहु और दाएं पैर के अस्थि भंगों को दर्शाने वाली एक्स-रे प्लेटों और रिपोर्ट (प्रदर्श क-3) को प्रमाणित किया। पी.डबल्यू.6 डॉ. जे.के. सकसेना, दंत शल्य चिकित्सक, ने डॉ. टी.पी. शर्मा (जिनकी तब से अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



मृत्यु हो चुकी है) की क्षति रिपोर्ट (प्रदर्श क-5), जिसमें बटुकदेव तिवारी के शरीर पर सोलह क्षतियां अभिलिखित हैं, जिनमें बाईं अल्ना और रेडियस की संयुक्त अस्थिभंग, दाईं जाइगोमैटिक चाप की अस्थि भंग, तथा सिर, चेहरे और पैर पर अनेक विदीर्ण घाव सम्मिलित हैं, जिन्हें ताजा और कुंद पदार्थ से कारित होना अभिमत किया गया, को प्रमाणित किया, साथ ही मुख पर पांच क्षतियों, जिनमें दाहिने मैक्सिला की अस्थि भंग सम्मिलित है, के अपने स्वयं के निष्कर्ष (प्रदर्श क-4) को भी प्रमाणित किया।

7. अपीलार्थीगण ने, अपने कथनों में, अभियोजन के अभिकथनों से इनकार किया और ऊपर उल्लिखित पूर्व-विद्यमान शत्रुता के कारण मिथ्या फंसाए जाने का अभिवचन किया। विचारण के दौरान धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिलिखित अपने कथन में, अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी ने अपनी आयु लगभग 45 वर्ष बताई। अपीलार्थी महानंद तिवारी ने अतिरिक्त रूप से कथन किया कि वह रेलवे में टिकट कलेक्टर के रूप में नियोजित था। प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

8. साक्ष्य के मूल्यांकन पर, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन ने अपीलार्थीगण महानंद तिवारी, श्रद्धानंद तिवारी, शिव हर्ष और शिवजी यादव के विरुद्ध अपना वाद युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध कर दिया है, और उन्हें, जैसा ऊपर उल्लिखित है, दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया, जबकि पी.डबल्यू.3 के उसकी व्यक्तिगत भूमिका के संबंध में विनिर्दिष्ट दोषमुक्तिकारी कथन के आधार पर तेज नारायण उर्फ तेजू को संदेह का लाभ दिया। उल्लेखनीय है कि, यद्यपि चिकित्सा साक्ष्य ने पी.डबल्यू.1 (प्रदर्श क-5) के शरीर पर 'सोलह विशिष्ट क्षतियां' प्रकट कीं, जिनमें अंगों की दो संयुक्त/संदिग्ध अस्थि भंगें, जाइगोमैटिक चाप की एक अस्थि भंग, तथा सिर और चेहरे पर अनेक विदीर्ण घाव सम्मिलित हैं, विचारण न्यायालय ने, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि क्षतियां केवल लाठियों से कारित हुई थीं (पिस्तौल की गोली चूक जाने के कारण) और विचारण के निस्तारण में साढ़े नौ वर्ष से अधिक के विलंब को दृष्टिगत रखते हुए, धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 307 के अंतर्गत मूल अपराध के लिए केवल तीन वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश अधिरोपित किया, जो उस अपराध के लिए अनुज्ञेय परास के निम्नतम सिरे पर है।

9. जीवित अपीलार्थी, श्रद्धानंद तिवारी के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों पर दोषसिद्धि पर आक्षेप किया है कि: (i) घटना परिवारों के बीच दीर्घकालीन सिविल

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



और आपराधिक वाद-विवाद में निहित है, जिससे मिथ्या फंसाया जाना एक वास्तविक संभावना बनती है; (ii) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब हुआ था; (iii) श्रद्धानंद तिवारी को सौंपी गई भूमिका सामान्य और बहुप्रयोजनीय है, उसे उस समूह के एक सदस्य के रूप में नामित किया गया है जो लाठी से सुसज्जित होकर पहुंचा और हमले में सम्मिलित हुआ, महानंद तिवारी (उकसावे), परमानंद तिवारी (फायरिंग) और शिव हर्ष (पहला लाठी प्रहार) को सौंपे गए प्रकार के किसी विनिर्दिष्ट, वैयक्तिकृत प्रकट कृत्य के अभिनिर्देशन के बिना; और (iv) व्यापक रूप से समान प्रकृति के तथ्यों पर सह-अभियुक्त तेज नारायण उर्फ तेजू की दोषमुक्ति को देखते हुए, अपीलार्थी समान लाभ का हकदार है।

10. राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने दोषसिद्धि का समर्थन करते हुए यह इंगित किया कि विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य के रूप में, लाठी से सुसज्जित, घटनास्थल पर श्रद्धानंद तिवारी की उपस्थिति, पी.डबल्यू.1, पी.डबल्यू.2 और पी.डबल्यू.3 की गवाही से संगत रूप से स्थापित है, जिनमें से किसी ने भी उसके पक्ष में तेज नारायण उर्फ तेजू के पक्ष में किए गए कथन के तुल्य कोई दोषमुक्तिकारी कथन नहीं किया, कि उसका वाद, तदनुसार, दोषमुक्त अभियुक्त के वाद से विभेद्य है; और कि एक बार जब बटुकदेव तिवारी को घोर उपहति कारित करने के सामान्य उद्देश्य को साझा करने वाले विधिविरुद्ध जमाव की सदस्यता स्थापित हो जाती है, तो हिंसा के किसी पृथक वैयक्तिक कृत्य के प्रमाण के बिना भी धारा 149 भा.द.सं. के अंतर्गत आपादित दायित्व आबद्ध होता है।

11. अभिलेख का परीक्षण करने पर, यह न्यायालय अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी की सीमा तक विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन में कोई दुर्बलता नहीं पाता है। पी.डबल्यू.1, पी.डबल्यू.2 और पी.डबल्यू.3 का साक्ष्य उसकी घटनास्थल पर, लाठी से सुसज्जित, उस समूह के भाग के रूप में उपस्थिति के संबंध में संगत है, जिसने महानंद तिवारी द्वारा पूर्व में घोषित सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में बटुकदेव तिवारी को घेरा और उस पर हमला किया। तेज नारायण उर्फ तेजू के वाद के विपरीत, किसी साक्षी ने यह कथन नहीं किया है कि श्रद्धानंद तिवारी केवल भाग लिए बिना खड़ा रहा। तेजू को दिया गया लाभ पी.डबल्यू.3 के केवल उसके संबंध में एक विनिर्दिष्ट, सकारात्मक दोषमुक्तिकारी कथन पर आधारित था, और समता के आधार पर उस अपीलार्थी को नहीं दिया जा सकता जिसके विरुद्ध ऐसा कोई कथन विद्यमान नहीं है। प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य पी.डबल्यू.5 और पी.डबल्यू.6 के चिकित्सा साक्ष्य तथा क्षति रिपोर्टों (प्रदर्श क-3, प्रदर्श क-

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



4 और प्रदर्श क-5) से पर्याप्त रूप से संपुष्ट है, जो यह स्थापित करती हैं कि बटुकदेव तिवारी को सोलह ताजा क्षतियां आईं, जिनमें संयुक्त और अन्य अस्थिभंगें सम्मिलित हैं, जो लाठियों का प्रयोग करते हुए एक से अधिक हमलावरों द्वारा सतत हमले के अनुरूप कुंद बल से कारित हुईं। पूर्व शत्रुता के कारण मिथ्या फंसाए जाने का अभिवचन, अधिक के बिना, प्रत्यक्ष और संपुष्ट प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को विस्थापित नहीं करता, बल्कि, यदि कुछ है भी तो, हेतुक का विद्यमान होना अभियोजन के वाद को कमजोर करने के बजाय उसे आश्वस्ति प्रदान करता है। एफ.आई.आर. दर्ज कराने में विलंब पी.डबल्यू.2 की अपने गंभीर रूप से घायल भाई के लिए आपातकालीन उपचार प्राप्त करने में व्यस्तता से संतोषजनक रूप से स्पष्ट है, और यह अभियोजन के वाद के आधार को प्रभावित नहीं करता है।

12. एक बार जब यह पाया जाता है, जैसा यह न्यायालय पाता है, कि श्रीधरानंद तिवारी एक विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य था जिसका सामान्य उद्देश्य, जो महानंद तिवारी की पूर्व घोषणा तथा उसके पश्चात सम्मिलित, समकालिक हमले के माध्यम से प्रकट हुआ, बटुकदेव तिवारी को घोर उपहति कारित करना था, तो धारा 147 भा.द.सं. तथा धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 307 के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि सुस्थापित है और इसमें कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है। अपील, अतः, जिस सीमा तक वह दोषसिद्धि को चुनौती देती है, असफल होती है।

13. सुगम संदर्भ के लिए अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और धारा 5 नीचे पुनरुत्पादित की जाती हैं:

**“4. कतिप्रय अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय**

**की शक्ति-** (1) जब कोई व्यक्ति ऐसा कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो

मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को

दोषी पाया है उसकी यह राय है कि वाद की परिस्थितियों को, जिनके अन्तर्गत अपराध

की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी है, ध्यान में रखते हुए उसे सदाचरण की परिवीक्षा

पर छोड़ देना समीचीन हो, तब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते

हुए भी वह न्यायालय उसे तुरन्त दण्डित करने के बजाय, यह निदेश दे सकेगा कि उसे,

प्रतिभुओं के सहित या उनके बिना, उसके द्वारा ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाए कि

वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसी न्यायालय निर्दिष्ट करे,



बुलाये किए जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा और इस बीच शांति बनाये रखेगा और सदाचारी रहेगा :

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी के ऐसे छोड़ दिए जाने का निदेश तब तक नहीं देगा जब तक उसका समाधान नहीं हो जाता कि अपराधी या उसके प्रतिभू का, यदि कोई हो, नियत निवास-स्थान या उस स्थान में नियमित उपजीविका है, जिस पर वह न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस कालावधि के दौरान रहने की संभाव्यता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करने से पूर्व न्यायालय, वाद के बारे में, संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर, यदि कोई हो, विचार करेगा।

(3) जब उपधारा (1) के अधीन आदेश किया जाता है तब, यदि न्यायालय की यह राय है कि अपराधी और जनता के हितों में ऐसा करना समीचीन है, तो वह उसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निदेश होगा कि अपराधी आदेश में नामित किसी परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण के अधीन एक वर्ष से कम न होने वाली ऐसी कालावधि के दौरान रहेगा जो उसमें विनिर्दिष्ट हो, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जैसी वह अपराधी के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझता है।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय अपराधी से अपेक्षा करेगा कि छोड़े जाने से पूर्व, वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों का और निवास-स्थान, मादक पदार्थों से प्रविरत या किसी अन्य बात के बारे में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का, जैसी न्यायालय विशिष्ट परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए उसी अपराध की पुनरावृत्ति को या अपराधी द्वारा अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे, पालन करने के लिए प्रतिभूओं के सहित या बिना एक बंधपत्र दे।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करने वाला न्यायालय आदेश के निबंधनों और शर्तों को अपराधी को समझाएगा और प्रत्येक अपराधी, प्रतिभू, यदि कोई हो, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तुरन्त पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति देगा।

#### 5. छोड़े गए अपराधियों से प्रतिकर और खर्च देने का आदेश करने की न्यायालय

**की शक्ति—** (1) धारा 3 या धारा 4 के अधीन अपराधी को छोड़ने का निदेश देने वाला

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायालय, यदि ठीक समझता है, तो उसी समय एक अतिरिक्त आदेश कर सकेगा जिसमें उसे निम्नलिखित संदत्त करने के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा—

(क) अपराध के किए जाने से किसी व्यक्ति की हुई हानि या क्षति के लिए इतना प्रतिकर जितना न्यायालय युक्तियुक्त समझता है; और

(ख) कार्यवाहियों के इतने खर्चे जितने न्यायालय युक्तियुक्त समझता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन संदत्त किए जाने के लिए आदिष्ट राशि संहिता की धारा 386 और 387 के उपबंधों के अनुसार जुर्माने के रूप में वसूल की जा सकेगी।

(3) अगर कोई सिविल न्यायालय उसी मामले से जुड़े किसी मुकदमे की सुनवाई कर रही है जिसके लिए अपराधी पर मुकदमा चलाया गया है, तो वह हर्जाना तय करते समय उप-धारा (1) के तहत प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूली गई रकम को ध्यान में रखेगी।”

14. **सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य, (2005) 13 एस.सी.सी. 110** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“जो शक्ति विवेकाधीन है, उसका प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होगा। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़ित पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ उपबंधों के अंतर्गत परिसीमा के अध्यधीन है और शब्द “में” स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और वाद की समग्र परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में अपराधी को छोड़ना है या नहीं, इसका विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है। परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियां न्यायालय में तब निहित होती हैं जब कोई व्यक्ति ऐसे कारित अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। यह शक्ति न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय प्रयोग की जा सकती है और यदि न्यायालय यह समझता है कि वाद की परिस्थितियों, जिनमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र सम्मिलित है, को दृष्टिगत रखते हुए अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो यह शक्ति न्यायालय

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



द्वारा अपीलीय या पुनरीक्षण प्रक्रम पर भी तथा संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी प्रयोग की जा सकती है।”

15. **लखनलाल उर्फ लखन सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 100** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“10. *रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 444* में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने, 1958 के अधिनियम के उपबंधों की परीक्षा करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अपराधी 21 वर्ष से कम आयु के हैं, तो न्यायालय को यह व्यादेश दिया जाता है कि जब तक उसका समाधान न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए उनसे 1958 के अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना समीचीन नहीं है, तब तक उन्हें कारावास का दंडादेश न दे, परंतु 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के संबंध में, न्यायालय को ऐसे अपराधियों को या तो चेतावनी देने के पश्चात अथवा सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने का पूर्ण विवेकाधिकार है। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि दंडिक विधि का उद्देश्य व्यक्ति अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसे सुधारना अधिक है। व्यापक तौर पर कहा जाए तो, अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों में, तथा उन अपराधियों में, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध कारित करने के दोषी हैं और जो लघुतर अपराध के दोषी हैं, में विभेद करता है। जहां 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के वाद में, अधिनियम के समुचित उपबंधों में अधिकथित शर्तों के अधीन, न्यायालय को उन्हें चेतावनी देने के पश्चात अथवा सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने का पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में न्यायालय को यह व्यादेश दिया जाता है कि जब तक उसका समाधान न हो जाए कि, अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित वाद की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, उनसे अधिनियम की धारा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना समीचीन नहीं है, तब तक उन्हें कारावास का दंडादेश न दे।”

11. इस न्यायालय ने *जुगल किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1972) 2 एस.सी.सी. 633* में उपबंध के औचित्य को यह स्पष्ट करते हुए विवेचित किया कि यदि युवा अपराधियों को कारागार में कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है, तो परिपक्व आयु के घोर अपराधियों के साथ उनके साहचर्य के परिणामस्वरूप युवा अपराधियों के हठी अपराधियों में परिवर्तित होने को रोका जाए। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“6. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम वर्ष 1958 में कतिपय श्रेणियों के अपराधियों को परिवीक्षा पर अथवा सम्यक् चेतावनी के पश्चात छोड़े जाने का तथा उससे संबंधित विषयों का उपबंध करने की दृष्टि से अधिनियमित किया गया था। अधिनियम का उद्देश्य यह है कि यदि युवा अपराधियों को कारागार में कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है, तो परिपक्व आयु के घोर अपराधियों के साथ उनके साहचर्य के परिणामस्वरूप उनके हठी अपराधियों में परिवर्तित होने को रोका जाए। उपर्युक्त उद्देश्य दंडशास्त्र के क्षेत्र में वर्तमान प्रवृत्ति के अनुरूप है, जिसके अनुसार व्यष्टिक अपराधियों के सुधार और पुनर्वास को लाने का प्रयास किया जाना चाहिए, न कि प्रतिशोधात्मक न्याय का सहारा लिया जाना चाहिए। आधुनिक दंडिक न्यायशास्त्र यह मान्यता देता है कि कोई भी व्यक्ति जन्मजात अपराधी नहीं होता और यह कि अनेक अपराध सामाजिक-आर्थिक परिवेश की उपज होते हैं। यद्यपि घोर अपराधियों के लिए अधिक कुछ नहीं किया जा सकता, तथापि अत्यंत गंभीर अपराधों के दोषी न होने वाले युवा अपराधियों के सुधार को लाने तथा घोर अपराधियों के साथ उनके साहचर्य को रोकने पर पर्याप्त बल दिया गया है। अधिनियम उपर्युक्त उद्देश्य को कानूनी मान्यता प्रदान करता है। अतः, यह उपबंधित किया गया है कि युवा अपराधियों को, कतिपय परिस्थितियों को छोड़कर, कारागार नहीं भेजा जाना चाहिए। तथापि, अधिनियम के लाभ का सहारा लिए जाने से पूर्व, यह दर्शाया जाना आवश्यक है कि दोषसिद्ध व्यक्ति,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



यद्यपि 21 वर्ष से कम आयु का है, आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी नहीं है। यह अधिनियम की धारा 6 की भाषा से स्पष्ट है।”

16. मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2017) 2 एस.सी.सी. 198 में, सर्वोच्च न्यायालय ने परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग को निम्नानुसार पुनः प्रतिपादित किया:

“21. इस संबंध में, यह भी समुचित है कि अन्य निर्णयज विधि का संदर्भ दिया जाए ताकि यह प्रतिवेदित किया जा सके कि परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग किस प्रकार किया जाना है। *राम प्रकाश बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य*, (1972) 4 एस.सी.सी. 46 में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के संदर्भ में परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 से निपटते हुए, न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त शब्द “मेय” का अर्थ “अनिवार्य” नहीं है। इसके विपरीत, जैसा उक्त निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है, यह असंदिग्ध शब्दों में स्पष्ट किया गया है कि परिवीक्षा अधिनियम के उपबंध 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों में, तथा मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और लघुतर अपराध के दोषी अपराधियों में विभेद करते हैं। तत्पश्चात, न्यायालय ने यह अवलोकित किया:

“7.... जहां 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को उन्हें चेतावनी देने के पश्चात अथवा सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने का पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में न्यायालय को यह व्यादेश दिया जाता है कि जब तक उसका समाधान न हो जाए कि, अपराध की प्रकृति और अपराधियों के चरित्र सहित वाद की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, उनसे अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना समीचीन नहीं है, तब तक उन्हें कारावास का दंडादेश न दे। (*रतन लाल बनाम पंजाब राज्य*, एआईआर 1965 एससी 444 और *रामजी मिसर बनाम बिहार राज्य*, एआईआर 1963 एससी 10881)”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



उल्लेखनीय है कि, उक्त वाद में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के अंतर्गत अपराध को दृष्टिगत रखते हुए, न्यायालय ने परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत लाभ प्रदान करने से इनकार कर दिया।

22. हमने उपर्युक्त निर्णय का संदर्भ इस बिंदु पर बल देने के लिए दिया है कि परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व न्यायालय को अपराध की प्रकृति और परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत सन्निविष्ट शर्तों को दृष्टिगत रखना होगा। यह उल्लिखित किया जाए कि *दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 5 एस.सी.सी. 82* में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संसद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल तभी जब न्यायालय वाद की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए यह राय बनाता है कि दोषसिद्ध व्यक्ति को सदाचरण के लिए परिवीक्षा पर छोड़ना समीचीन है, और ऐसी राय बनाने में जिस परिस्थिति को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, उनमें से एक “अपराध की प्रकृति” है। न्यायालय ने आगे यह अभिमत व्यक्त किया कि यद्यपि न्यायालय में यह विवेकाधिकार निहित किया गया है कि न्यायालय ऐसी राय कब और कैसे बनाए, तथापि उपबंध स्वयं यह पर्याप्त संकेत देता है कि दोषसिद्ध व्यक्ति को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ा जाना न्यायालय को समीचीन प्रतीत होना चाहिए। शब्द “समीचीन” को स्पष्ट करते हुए न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

“9. ... शब्द “समीचीन” को संसद द्वारा धारा में सोच-समझकर इस आशय से प्रयुक्त किया गया था कि इसका अर्थ “दृष्टिगत उद्देश्य के लिए समुचित और उपयुक्त” हो। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी में शब्द “समीचीन” को, पूर्व संदर्भित अन्य अर्थ के अतिरिक्त, “किसी विनिर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त और समुचित” के रूप में परिभाषित किया गया है। गुजरात राज्य बनाम जमनादास जी. पाब्रिल, (1975) 1 एस.सी.सी. 138 में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने शब्द “समीचीन” पर विचार किया है। विद्वान न्यायाधीशों ने प्रस्तर 21 में इस प्रकार अवलोकित किया है:

21. पुनः, इस उपबंध में प्रयुक्त शब्द “समीचीन” के अनेक अर्थ हैं।

एक शब्दकोशीय अर्थ में, “समीचीन” (विशेषण) का अर्थ है “दृष्टिगत उद्देश्य के लिए समुचित और उपयुक्त”, “व्यावहारिक और दक्ष”: “नीतिसंगत”;

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



“लाभप्रद”; “सलाह देने योग्य”, “वाद की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त, समुचित और अनुकूल”। एक अन्य अर्थ-छटा में, इसका अर्थ ऐसी युक्ति है जो “सिद्धांत के बजाय केवल उपयोगिता द्वारा अभिलक्षित हो, तथा जो सार्वभौमिक रूप से उचित के बजाय विशेष लाभ के अनुकूल हो” (वेब्सटर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी देखें)।’

10. तत्पश्चात यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय को उक्त शब्द का अर्थान्वयन उपबंध के संदर्भ और उद्देश्य के अनुरूप, उसकी व्यापकतम परिधि में करना चाहिए। यहां शब्द “समीचीन” परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 में इस संदर्भ में प्रयुक्त है कि न्यायालय पर “अपराध की प्रकृति सहित वाद की परिस्थितियों” को ध्यान में रखने का कर्तव्य अधिरोपित किया जाए। इसका आशय यह है कि धारा 4 का सहारा तब लिया जा सकता है जब न्यायालय वाद की परिस्थितियों, विशेष रूप से अपराध की प्रकृति, पर विचार करे, और न्यायालय यह राय बनाए कि किसी विनिर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह समुचित और उपयुक्त है कि अपराधी को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ा जाए।”

17. **चेल्लम्मल और अन्य बनाम राज्य, इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस द्वारा प्रतिनिधित्व, 2025 लाइवलों (एससी) 461** में, जहां सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थीगण (सास और पति) को धारा 304 बी भा.द.सं. के आरोप से दोषमुक्त कर दिया था किंतु उन्हें धारा 498 ए के अंतर्गत दोषसिद्ध किया था, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“विधिक स्थिति का सार प्रस्तुत करते हुए, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि कोई अपराधी अधिकार के रूप में परिवीक्षा प्रदत्त किए जाने के आदेश की मांग नहीं कर सकता, किंतु परिवीक्षा प्रदत्त किए जाने द्वारा कानूनी उपबंध जिस उद्देश्य की प्राप्ति चाहते हैं तथा परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 की प्रयोज्यता के बिंदु पर इस न्यायालय के अनेक निर्णयों को दृष्टिगत रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि, जब तक प्रयोज्यता अपवर्जित न हो, ऐसे मामले में जहां परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (1) में कथित परिस्थितियां आकृष्ट होती हैं, न्यायालय को अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़े जाने के विचार को अपने विचारण से बाहर रखने का कोई विवेकाधिकार नहीं है; इसके विपरीत, न्यायालय पर यह विचार करने का आज्ञापक कर्तव्य अधिरोपित है कि क्या उसके समक्ष

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



विद्यमान वाद, कथित परिस्थितियों की पूर्ति पर, अपराधी को छोड़े जाने का औचित्य सिद्ध करता है। परिवीक्षा प्रदत्त किए जाने का प्रश्न किसी भी प्रकार से विनिश्चित किया जा सकता है। यदि न्यायालय अपने विवेकाधिकार में परिवीक्षा का लाभ देने का विनिश्चय करता है, तो वह परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने पर ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकता है, जो उसे न्यायोचित और उचित प्रतीत हों। तथापि, यदि उत्तर नकारात्मक हो, तो न्यायालय के लिए उसके कारण अभिलिखित करना ही न्यायोचित और उचित होगा।”

18. एक पहलू पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। यह इंगित किया गया है कि विचारण न्यायालय ने, अपीलार्थी को दंडादिष्ट करते समय, कोई शास्ति अधिरोपित नहीं किया। धारा 307 भा.द.सं. अपराधी को कारावास के अतिरिक्त “शास्ति के लिए भी दायी” बनाती है। इस उपबंध के अंतर्गत शास्ति का अधिरोपण कारावास के दंडादेश का एक आज्ञापक सहगामी है। जहां भा.द.सं. का उपबंध दंड को इस रूप में विहित करता है: “....कारावास से दंडित किया जाएगा .... और शास्ति से भी दायी होगा”, अथवा “....कारावास और शास्ति से”, वहां विचारण न्यायालय से शास्ति भी अधिरोपित करने की अपेक्षा की जाती है। शास्ति अधिरोपित करने में विफलता दंडादेश में एक त्रुटि की कोटि में आती है। धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत शास्ति का अभाव, अतः, स्वयं में अभिलिखित दंडादेश में एक दुर्बलता गठित करता है। यह आगे उल्लिखित किया जाए कि न तो राज्य ने और न ही परिवादी ने शास्ति के अधिरोपण द्वारा दंडादेश की अभिवृद्धि चाहते हुए धारा 377 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कोई अपील अथवा पुनरीक्षण प्रस्तुत किया है। धारा 374 दं.प्र.सं. के अंतर्गत केवल दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत अपील में, यह न्यायालय, धारा 386 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, प्रति-अपील अथवा अभिवृद्धि हेतु सूचना के अभाव में अपीलार्थी के प्रतिकूल दंडादेश की अभिवृद्धि नहीं कर सकता है। अतः, इस मद पर कोई आदेश अपेक्षित नहीं है, और विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश अपनी संपूर्णता में कायम रखा जाता है।

19. दंडादेश के प्रश्न पर, तथापि, इस वाद के विशिष्ट तथ्यों के लिए पृथक और सूक्ष्म विचार अपेक्षित है। घटना दिनांक 20.03.1974 की है। अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी ने विचारण में धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिलिखित अपने कथन में अपनी आयु लगभग 45 वर्ष बताई थी, जो सितंबर 1983 में निष्कर्षित हुआ। तदनुसार वह वर्तमान में लगभग 88 वर्ष की आयु के हैं। यह

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अपील इस न्यायालय के समक्ष लगभग 43 वर्षों से लंबित रही है, जिसके लिए अपीलार्थी को कोई दोष आरोप्य नहीं है, और इस अवधि के दौरान उनके तीन सह-अपीलार्थियों की मृत्यु हो चुकी है। यह भी सुसंगत है, यद्यपि दोष का अवधारक नहीं है, कि पी.डब्ल्यू.1 के शरीर पर सोलह क्षतियां प्रकट करने वाले चिकित्सा साक्ष्य के बावजूद, विचारण न्यायालय ने स्वयं अधिकतम मूल दंडादेश के रूप में केवल तीन वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश अधिरोपित करना उचित समझा, अपराध को, उसके अपने तथ्यों पर, धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत दंडनीय हमलों की गुरुतमम कोटि से कम मानते हुए। (i) इस अपील के अंतिम निस्तारण में चार दशकों से अधिक के असाधारण और अत्यधिक विलंब, जो जमानत पर किसी दुर्व्यवहार के अभिकथन से पूर्णतः रहित है; (ii) लगभग 88 वर्ष के व्यक्ति के साथ सामान्यतः संलग्न वृद्धावस्था और अशक्तता; (iii) यह तथ्य कि अपीलार्थी इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार का अपीलार्थी है, जिसके विरुद्ध किसी पश्चातवर्ती अपराध का कोई अभिकथन नहीं है; और (iv) विचारण न्यायालय द्वारा स्वयं अधिरोपित मध्यम दंडादेश को दृष्टिगत रखते हुए, यह न्यायालय समाधानित है कि अपीलार्थी को अब, उसके जीवन के इस प्रक्रम पर, कारावास भुगतने की अपेक्षा करना न तो किसी दांडिक प्रयोजन की पूर्ति करेगा और न ही न्याय के हित में होगा। यह न्यायालय, तदनुसार, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का सहारा लेना तथा अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी को, धारा 149 भा.द.सं. सपठित धारा 307 के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि के होते हुए भी, उसे कारावास का दंडादेश देने के स्थान पर सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना उचित समझता है, क्योंकि इस मामले के तथ्यों में वस्तुतः अपेक्षित और अधिरोपित दंडादेश वर्षों की अवधि का है, न कि आजीवन कारावास का।

20. साथ ही, पी.डब्ल्यू.1 बटुकदेव तिवारी द्वारा स्वीकृत रूप से भुगती गई क्षतियों को दृष्टिगत रखते हुए, यह न्यायालय अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 5 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी को अपराध द्वारा कारित हानि और क्षति के लिए प्रतिकर संदाय करने का निर्देश देना आवश्यक समझता है, ताकि परिवीक्षा पर छोड़ा जाना परिणाम की बिना शर्त दोषमुक्ति के रूप में न माना जाए।

21. अतः, उपर्युक्त विनिर्दिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, अभियुक्त-अपीलार्थी को परिवीक्षा पर छोड़ा जाना न्यायोचित और उचित होगा। अतः अपील, दंडादेश में उपांतरण के साथ आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। अपीलार्थी श्रद्धानंद तिवारी की धारा 149 भा.द.सं.



सपठित धारा 147 और 307 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि एतद्वारा संपुष्ट की जाती है।  
तथापि, तीन वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश अपास्त किया जाता है।

22. दंडादेश के उपांतरण तथा अपीलार्थी को परिवीक्षा पर छोड़े जाने को दृष्टिगत रखते हुए, विचारण/अपील के दौरान पूर्व में प्रस्तुत किए गए जमानतनामे और प्रतिभू उन्मुक्त समझे जाएंगे।

23. अभियुक्त-अपीलार्थी **श्रद्धानंद तिवारी** को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अंतर्गत, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, परिवीक्षा पर छोड़ा जाए:

(i) अभियुक्त-अपीलार्थी संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अधीन एक वर्ष की अवधि के लिए समान राशि के एक प्रतिभू सहित रु.50,000/- (रुपये पचास हजार) की राशि का एक 'नवीन' व्यक्तिगत बंधपत्र इस वचन के साथ निष्पादित करेगा कि वह शांति और सदाचरण बनाए रखेगा और किसी आपराधिक क्रियाकलाप में सम्मिलित नहीं होगा।

(ii) अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 का सहारा लेते हुए, अपीलार्थी आज से एक माह की अवधि के भीतर पीड़ित को रु.35,000/- (रुपये पैंतीस हजार) का प्रतिकर संदाय करेगा। घायल/पीड़ित की मृत्यु होने की स्थिति में, अपीलार्थी वही राशि उसके विधिक प्रतिनिधियों को संदाय करेगा।

(iii) अपीलार्थी उपर्युक्त प्रतिकर राशि नियत अवधि के भीतर संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष जमा करेगा और विचारण न्यायालय, सूचना और सत्यापन के पश्चात, वह राशि पीड़ित(गण)/उसके विधिक वारिसों को बैंक खातों के माध्यम से देगा।

(iv) उपर्युक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियुक्त-अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश भोगते हुए मूल दंडादेश भुगतने के लिए दायी होगा।

24. विचारण न्यायालय अनुपालन सुनिश्चित करेगा तथा पर्यवेक्षण के लिए परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट मांगेगा।

25. विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से दो माह के भीतर अपनी अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इसके अतिरिक्त, रजिस्ट्री को भी अनुपालन रिपोर्ट अभिलेख पर रखने का निर्देश दिया जाता है।

26. अपीलार्थी को निर्देशित किया जाता है कि वह अपेक्षित बंधपत्र प्रस्तुत करने हेतु आज से दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो। व्यतिक्रम की स्थिति में, विचारण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायालय बाध्यकारी प्रक्रिया के जारी किए जाने सहित, विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा।

27. इस निर्णय की एक प्रति अनुपालनार्थ विचारण न्यायालय के अभिलेख सहित संबंधित विचारण न्यायालय को तत्काल प्रेषित की जाए।

28. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को भी निर्देशित किया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति तीन दिनों के भीतर फैक्स/ई-मेल द्वारा जिला एवं सत्र न्यायाधीश, देवरिया के माध्यम से संबंधित न्यायालय को अनुपालनार्थ तामील करें।

(न्यायमूर्ति संतोष राय)

14 अगस्त, 2026

अंकित